वेबसाइट के परिशेष विषय

गुढभक्ति-श्रद्धासुमन :-

स्व. समर्थ गुढ भक्ति

-पारस मुनि गीतार्थ

जो श्री समर्थ गुण गावे, हो..समकित निर्मल हो जावे ।टेर।
आगम ज्ञाता बहुश्रुत पंडित, सभी आपको कहते ।
सूत्र न्याय से सब के दिल का, समाधान नित करते ॥
हां, कोई न खाली जावे, हो..समकित निर्मल हो जावे ।१।
तर्क शक्ति गुढ अद्‌भुत थांरी, कोई न वादी टिकते ।
उदाहरण चुन ऐसे दें कि, फिर प्रतिप्रश्न न उठते ॥
हां, कटुता कभी न लावे, हो..समकित निर्मल हो जावे ।२।
क्रिया आपकी उन्नत ऐसी, क्रियापात्र कहलाए ।
दर्शन पा चौथे आरे की, स्मृति सभी को आए ॥
हां, बालवृद्ध हुलसाए, हो..समकित निर्मल हो जावे ।३।
नाम आपका सुन्दर जैसे, गुण भी आप में मिलते ।
सेवा विनय क्षमा आदि में, स्थान अनूठा रखते ॥
हां, गर्व न किंचित् लाए, हो..समकित निर्मल हो जावे ।४।
जिनशासन के सत्य रूप की, झांकी आप में मिलती ।
आप सरीखों से ही ऐसी, रीति-नीति सब निभती ॥
हां, शीश स्वतः झुक जावे, हो..समकित निर्मल हो जावे ।५।
दीप्ति अखंडित ब्रह्मचर्य की, ढँकी अग्नि ज्यों दमके ।
ज्ञानचंद्र मुनि संप्रदाय में, सूरज बनकर चमके ॥
हां, कीर्ति बहुत ही पाये, हो..समकित निर्मल हो जावे ।६।
पा के आपको लगता ऐसे, मैने सब कुछ पाया ।
पारस ने चरणों में आपके, तन-मन सभी चढाया ॥
हां, दया आपकी चाहे, हो..समकित निर्मल हो जावे ।७।

०००००

स्व. ज्ञानगच्छाधिपति तपस्वी गुढ की भक्ति

-बाबुलाल जैन, उज्जवल

एक सहस पर आठ पूज्य श्री, चम्पालाल तपस्वीराज ।
बालब्रह्मचारी शम धारी, उग्रविहारी गणाधिराज ॥१॥
पूज्य पिताश्री किशनलालजी, पानी बाई जी माता ।
उन्नीसो सत्तर फाल्गुन सुदी, एकम को जन्मे त्राता ॥२॥
गाँव मसूदा ओसवाल कुल, जाति मिली छाजेड महान ।
खीचन में पाई है दीक्षा, गुढ श्री समर्थ गुणभंडार ॥३॥
ज्ञानगच्छ समुदाय आपका, अधिपति का पद पाया फिर ।
दो हजार उनतीस विक्रमी, मिगसिर मास लगन बल स्थिर ॥४॥
पचपन वर्ष करीब आपका, संयमकाल सुहाना है ।
सतरह वर्षों से अधिपति पद, जैन जगत ने जाना है ॥५॥
मुमुक्षुओं को दी दीक्षाएँ, दो सौ से उपर तेतीस ।
प्रतिसंवत्सर औसत पंद्रह का, स्लाघनीय है विश्वाबीस ॥६॥
पद से मद से दूर निरंतर, साहस संयम में भरपूर ।
सरल स्वभावी महा तपस्वी, उज्जवल परिणामी अक्रूर ॥७॥
कथनी करनी एक सरीखी, वैराग्यपूर्ण देते व्याख्यान ।
काया से दुबले-पतले पर, हिंमत से है आप महान ॥८॥
ऐसे पूज्य प्रवर श्री देवें, सत्य सहारा संयम का।
"उज्जवल" उज्जवल भाव बनावें, करे समर्पण कृत शमका ॥९॥

०००००

पूज्यवर श्री प्रकाशचन्द्रजी म.सा. को श्रद्धा पुष्प

परम पूज्य गुढदेव ज्ञानगच्छाधिपति तपस्वीराज श्री चम्पालालजी म.सा. को गच्छ चिन्ता से मुक्त जीवन प्रदान कर्ता, आत्मार्थी, संयमनिष्ठ, बुद्धिनिधान, विचक्षण, जितेन्द्रिय, प्रशांतात्मा, ज्ञान गच्छ के मेढीभूत, श्रद्धाकेन्द्र, जिनशासन की शान, बहुश्रुत-गीतार्थ, क्षमा-शिरोमणि, परम आदरणीय, परमोपकारी, प्रकाशपुंज, पूज्यवर श्री प्रकाशचन्द्रजी म.सा. के संयम स्वास्थ्य एवं गच्छ संचालन की मंगल कामना..

जो परिभवइ परं जणं, संसारे परिवत्तइ महं ।

अर्थ- जो दूसरों का पराभव करता है, तिरस्कार हीलना निंदा करता है, दूसरों की हल्की लगाने की कोशिष करता है वह महान संसार में परिभ्रमण करता है । ***-सूयगडांग सूत्र अ.२, उ.२ गा.२.***

वीरपुत्र वंदना

परमपूज्य श्रीमद् जवाहिराचार्य के परम भक्त, पूज्य श्री श्रमण श्रेष्ठ के शिष्य रत्न, **वीरपुत्र** उपनाम से अलंकृत, विकट तपस्वी, अप्रमतजीवी, पवित्रात्मा, सूक्ष्म दृष्टि से अध्यनशील अध्यापन में सदा दत्तचित्त, परिपूर्ण घट के समान गंभीरमना, विचक्षणता से युक्त, व्यवहारकुशल, निर्भय, दृढमनोबलि, नैतिकजीवी, परम आदरणीय, ज्ञानगच्छ के शिरोमणि, पंडित रत्न पूज्य श्री घेवरचन्द जी म.सा. के चरणों में भावयुक्त वंदना..

आत्महित संदेश

- जैसी दे वैसी मिले, कुए की गुंजार ।
- छिद्रान्वेषी बनना नरक है, गुणग्राही बनना स्वर्ग है ।
- किसी का भला न कर सको तो बुरा भी मत करो, मत सोचो ।

-शुभदृष्टि अभिलाषी आगम मनीषी त्रिलोक मुनि

ooooo

आगम सारांश के रचयिता मुनिराज श्री के
नव ज्ञान गच्छ का परिचय

ज्ञान गच्छ से कितने ही संत अपने विचारों से एवं परिस्थिति का समन्वय नहीं होने से पृथक होकर अलग-अलग विचरण कर रहे थे ।

इसी बीच सन् १९९० में पचपदरा ग्राम में ज्ञानगच्छाधिपति पूज्य तपस्वीराज श्री चम्पालालजी म.सा. की सद्भावना एवं सद्प्रेरणा हुई कि गच्छ से अलग विचरने वाले सभी संत संगठित होकर विचरण करो, इसमें मुझे बहुत प्रसन्नता एवं संतुष्टी होगी ।

पूज्य गुढदेव की उसी सद्भावना एवं सद्प्रेरणा को आज्ञा एवं आशीर्वाद समझ कर गच्छ से पृथक संतो ने संगठित होने का प्रयास आरंभ किया एवं शीघ्र ही उन्हें इच्छित सफलता प्राप्त हुई । तदनंतर इस संगठन के स्वतंत्र परिचय के लिये **"नव ज्ञान गच्छ"** ऐसा नामरण किया गया जिसकी प्रमुखता आगम मनीषी श्री त्रिलोकमुनिजी ने स्वीकार की प्रथम वर्ष में आपकी स्वीकृति से चार चातुर्मास हुए ।

(१) मसूदा- (१) गच्छ प्रमुख आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म.सा. (२) जिनशासन प्रभावक मधुर व्याख्यानी श्री गौतम मुनिजी म.सा. (३) नवदीक्षित श्री अमृतमुनिजी म.सा.

(२) वडगाँव- (१) धर्मोपदष्टा श्री रामचंद्रजी म.सा. ठाणा एक ।

(३) गुलाबपुरा- (१) प्रखर व्याख्याता पंडित श्री विनयमुनि जी म.सा. (२) नवदीक्षित श्री श्रवणमुनि जी म.सा.

(४) बरखेडा- तपस्वी श्री भंवर मुनि जी म.सा. ठाणा एक ।

इस प्रकार यह नवज्ञान गच्छ ज्ञान गच्छ का ही खंडित हुआ एक अंग है अतः इसे ज्ञान गच्छ में से निकली हुई एक शाखा समझना चाहिए ।

ooooo

नव ज्ञान गच्छ का उद्देश्य

१. **नव ज्ञान गच्छ** का प्रमुख लक्ष्य है- गच्छमुक्त संतों को उनकी चित्त समाधि अनुसार व्यवस्था करके एक सूत्र में संबंधित रखना ।

२. तद हेतु आगम पाठों का चिंतन करके लुप्त परम्पराओं का पुनढत्थान किया जायेगा । यथा साधु का स्वतंत्र विहार, स्वतंत्र गोचरी, संभोग पच्चक्खाण, सहाय पच्चक्खाण एवं अनेक अभिग्रह धारण करके कभी अलग रहते हुए भी गच्छ प्रमुख से संबंधित रहना तथा कभी साथ में रहते हुए साधना करना ।

३. इन साधनाओं के लिए एक योग्यता निर्धारित की जायेगी उसमें उत्तीर्ण साधक को उपरोक्त साधनाओं का अवसर प्राप्त होगा ।

४. इस गच्छ की समाचारी और प्ररूपणा प्रचलित परंपराओं से अप्रतिबद्ध होगी । साथ ही आगम प्रमाण एवं तर्कसंगत समाधानों से परिपूर्ण होगी ।

५. इस गच्छ में साधक जघन्य मध्यम एवं उत्कृष्ट अनेक दर्जे की साधना एवं समाचारी का पालन कर सकेंगे एवं आपस में प्रेम और आत्मीयता से रहेंगे ।

६. श्रमण संघ के साधु समाज के साथ एवं अन्य स्वतंत्र गच्छों के साथ उदारतापूर्ण सद्व्यवहार रखा जायेगा जिसमें उत्कृष्ट रूप से ऐच्छिक नव संभोग भी रखे जा सकेंगे । जिसे मैत्री संबंध माना जायेगा ।

७. इस गच्छ के उक्त प्रमुख सिद्धांतों से असहमत साधु को सम्मिलित नहीं किया जायेगा अथवा बाद में भी मुक्त कर दिया जायेगा ।

८. कालांतर से आवश्यक होने पर इस संगठन में अन्य गच्छों के भिन्न समाचारी वाले संतों को भी सम्मिलित कर समन्वय करने का प्रावधान है एवं उस संघ का परिचय **महावीर श्रमण संघ के** नाम से रहेगा ।

०००००

आगम सारांश की विशेषताएँ

(१) ३२ लघु पुस्तकों में ३२ आगम ।
(२) सरल हिन्दी भाषा में ।
(३) प्रत्येक आगम का मौलिक सारांश एक-एक बुक में ।
(४) जटिल विषयों का सुगम सार ।
(५) चार छेद सूत्रों का सूत्र क्रमांक युक्त सार ।
(६) छेद सूत्रों के आवश्यक विविध विवेचन एवं चर्चाएँ ।
(७) श्रावक जीवन के उत्थान योग्य विषय ।
(८) श्रमण गुणवर्धक निबंध ।
(९) भ्रांत विचारणा एवं परंपराओं का विवेक ।
(१०) ऐतिहासिक निबंध ।
(११) सामाजिक व्यवहार, वंदन एवं शिष्टाचार ।
(१२) संवत्सरी पर्वाराधना एवं ऐक्यता विचारणा ।
(१३) अल्प समय एवं अल्प परिश्रम में संपूर्ण आगम अनुभव ।
(१४) अस्वाध्याय या आशातना का कोई प्रश्न नहीं ।
(१५) कभी भी पढें, कोई भी पढें, कहीं भी पढें ।
(१६) कोई भी विषय में जिज्ञासा हो तो संपर्क सूत्र राजकोट के पते पर संपर्क करके समाधान प्राप्त किया जा सकता है ।

इन छोटी सी पुस्तिकाओं में जैन परंपराओं से विलुप्त हुए कई आगमिक सिद्धांतो का सप्रमाण पुनढद्धार किया गया है । कई नये-नये लगने वाले तत्त्व उजागर किये गये है । यह आगम मनीषी श्री की निर्भीकता एवं बहुश्रुतता का प्रतीक है ।

-समरथमल विनोदकुमार सूरिया, खेडब्रह्मा

मुनिश्री के मुख्य उपदेशी प्रेरक वाक्य

(१) शब्दों को न देखो, भावों को देखो ।
(२) अवगुण की चर्चा न करो, गुण ग्रहण करो ।
(३) परंपराओं के दुराग्रह में न फँसो ।
(४) उदारहृदयी बनकर नूतन तत्त्वों का अनुप्रेक्षण करो ।
(५) समभाव और समाधि भावों को मत गुमाओ ।
(६) किसी के प्रति वेरविरोध या कलुस भाव मत रखो ।
(७) आगमों के प्रति सर्वाधिक सन्मान रखो ।
(८) आगम निरपेक्ष परंपराओं को पकडे रखना मूर्खता है, आगम विपरीत परंपराओं का दुराग्रह करना महा मूर्खता है ।
(९) उत्कट त्याग में भी धर्मविवेक होना आवश्यक है ।
(१०) अनुकंपा तो समकित का मुख्य लक्षण है ।
(११) हिंसा एवं आडंबर की प्रवृत्तिया धर्म नहीं है किन्तु धर्म में आई हुई विकृत परंपराएँ है, वे त्याज्य है ।
(१२) अखूट समभाव की उपलब्धि होना ही धर्म साधना की सच्ची सफलता है ।
(१३) हम किसी से भी कर्म बंध नहीं करें, यही ज्ञान का सार है ।
(१४) भावों की शुद्धि एवं हृदय की पवित्रता, यही साधना का प्राण है ।
(१५) आगम निरपेक्ष चिंतन नहीं होना चाहिये ।
(१६) आगम ही छद्मस्थों के लिये सर्वोपरि है ।
(१७) जो आगम प्रमाण के सामने आने पर भी परंपरा और पूर्वजों की दुहाई देते है और उन्हें आगे करते हैं वे धर्म के मर्म से दूर हैं, आगम प्रमाण के द्रोही है ।
(१८) परंपराओं के नाम से किसी को उत्सूत्र प्ररूपक कहना घोर पाप है ।
(१९) दूसरों की निंदा, अवहेलना करने वाला महान संसार में परिभ्रमण करता है ।- ***सूयगडांग सूत्र अ.२ ।***
(२०) आगम विपरीत कोई भी आचरण करके उसका प्रायश्चित नहीं करना, उसे ही शिथिलाचार कहा जाता है ।
(२१) आगम विपरीत आचरण करके उसका मंडन या प्ररूपण करना यह स्वच्छंदाचार है, खोटी प्ररूपणा है ।
(२२) आगम संमत अर्थ-परमार्थ को परंपरा के नाम से नकारना या स्वीकार नहीं करना, यह अज्ञानता-मूर्खता है ।
(२३) समभाव की प्राप्ति एवं उससे अखूट आत्मशांति पाना, यही श्रावक जीवन एवं संयम जीवन का मुख्य लक्ष्य है ।
(२४) समभाव की एवं शांति की प्राप्ति होना यही समस्त धर्म साधनाओं का श्रेष्ठ फल है ।
(२५) किसी भी व्यक्ति के संयोग में एवं कोई भी उपस्थित विकट परिस्थिति में यदि अपना समभाव शांति स्थिर रह जाय, तो समझना चाहिये कि हमने धर्माचरण का सच्चा आनंद पाया है एवं हमारा धर्माचरण सफल है ।
(२६) परिस्थिति एवं संयोग में जिसके समभाव एवं शांति भंग होते हैं तो उसने साधना का आत्मानंद नहीं पाया है ।
(२७) समभाव एवं आत्मशांति की प्राप्ति के लिये ही संपूर्ण साधनाएँ की जाती हैं ।
(२८) शास्त्र प्रमाण आदि के सामने परम्परा का तर्क देना अनागमिकता है, अज्ञान दशा है । क्योंकि परम्परा का महत्व सदा शास्त्राज्ञा से कम होता है ।
(२९) परंपराओं का मोह एक प्रकार का दूषण है तो अनागमिक या आगम असम्मत परम्पराओं का दुराग्रह करना महा दूषण है ।
(३०) आगम प्रमाण से रहित परम्पराओं के लिए प्रेम एकता एवं समाज की शांति को भंग करना हठधर्मीपन एवं अधार्मिकता है ।
(३१) पंचांग में लिखी भादवासुदी पंचमी कोसंवत्सरी पर्व मानने की एकता करने में किसी भी आगम से विरोध नहीं होता है ।
(३२) पंचाग में लिखी अमावश पूनम को ही पक्खी करना चाहिए।
(३३) युग की आवाज-संवत्सरी एक हो । पर्व दिवस एक हो ।

(३४) श्रावक बहुश्रुत हो सकता है अतः छेदसूत्र पढ सकता है ।
(३५) **अन्य स्थाने कृतं पापं, धर्म स्थाने विमुच्यते । धर्मस्थाने कृतं पापं वज्र लेपो भविष्यति** । तात्पर्य यह है कि धर्म स्थान में आकर के पूर्ण पवित्रभावों से रहना चाहिये ।
(३६) धार्मिक बनने के बाद नीतिशुद्ध होना ये साधक का प्रथम कर्तव्य है । नैतिक बनो, नीतिभ्रष्ट नहीं बनो । धार्मिकता के साथ नीतिमत्ता पूर्ण जीवन ही व्यक्ति को श्रेष्ठ और पवित्र बनाने वाला होता है । जब कि जीवन में अनैतिकता से धार्मिकता नष्ट हो जाती है ।
(३७) गुणानुरागी बनना चाहिये, परदोषों को देखने की आदत से दूर रहना चाहिये ।
(३८) जीवन में गुण विकास, तप विकास, ज्ञान विकास के साथ विनय-विवेक में भी वृद्धि करना चाहिये ।
(३९) दूसरों के लिये मात्र उत्सर्ग विधि का एकांत आग्रह रखना और कसौटी करना, दोष देखना; परंतु स्वयं के उपर परिस्थिति आते ही अपवाद सेवन कर लेना यह संकुचित तथा हीन मनोदशा है ।
(४०) वास्तव में तो खुद के लिये कथनी और करणी में उत्सर्ग विधि का ही आदर्श जीवन में रखना चाहिये । 'मरना मंजूर किन्तु दोष लगाना नहीं, अपवाद सेवन करना नहीं । परंतु दूसरों के लिये परम उदार अनुकंपाभाव रखना कि- प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी परिस्थिति, भावना, क्षमता अनुसार प्रवृति, प्रयत्न करते हैं ।' ऐसे विचार और स्वभाव रखना तथा समभाव रखना यह परम उच्च मनोदशा है ।
(४१) सम्यगदृष्टि का कषाय रंजभाव पानी समाप्त होने पर तालाब की मिट्टी में पडी तराडों के समान होता है । वे तराडें अगले वर्ष में वर्षा पडने पर समाप्त हो जाती है । उसी प्रकार धर्मी पुढष या सम्यग्दृष्टि पुढष का कषाय संवत्सरी बाद समाप्त हो जाना आवश्यक है ।

जो व्यक्ति संवत्सरी पर्व बाद भी किसी व्यक्ति से नाराजी, रंजभाव, कषाय भाव रखता है उसकी समकित नहीं रहती है, वह भाव से मिथ्यादृष्टि हो जाता है । चाहे वह साधु हो या श्रावक।
(४२) श्रावक का कषाय रेत में बैलगाडी के पहियों की लकीर जैसा होता है । वह लकीर दो चार दिन में या १०-१५ दिन में समाप्त हो जाती है । वैसे ही श्रावक का किसी के प्रति रंजभाव, नाराजीभाव पक्खी के बाद नहीं रहना चाहिये अन्यथा श्रावक का गुणस्थान नहीं रहता है ।
(४३) साधु का कषाय पानी में खेंची गई लकीर के समान तुरंत मिट जाना चाहिये । इसे संज्जवलन कषाय कहते हैं । एक दिन से अधिक कषाय रंजभाव रहने पर साधुत्व नहीं रहता है, गुणस्थान छूट जाता है ।

मंदिर मूर्तिपूजा :- (१) धर्म के नाम से अर्थात् मोक्षप्राप्ति हेतु भी कई अज्ञानी प्राणी संसार में पृथ्वी, पाणी, अग्नि आदि छकाय जीवों की हिंसा करते हैं, किन्तु वह हिंसा इनके अहित के लिये एवं धर्म की दुर्लभता के लिये होती है ।- ***आचारांग सूत्र अध्ययन-१*** ।
(२) मंदिर बनाना पापकारी कार्य है ।-***महानिशीथ सूत्र, अध्याय-५, सूत्र-१२९*** ।
(३) मूर्ति पूजा करने वाले एवं उसकी प्रेरणा करने वाले निर्दयी, मिथ्यादृष्टि, चंड, रौद्र एवं व्रत भंग करने वाले तथा अनंत संसार में भ्रमण करने वाले है, हे गौतम ! ऐसे कार्यों के करने वालों को भला भी नहीं जानना चाहिये, उनका अनुमोदन भी नहीं करना चाहिये ।-***महानिशीथ सूत्र ।***
(४) स्नान, मूर्तिपूजा आदि सावद्य कार्यों का उपदेश सूत्रकारों का उपदेश नहीं है ।-***हेमचन्द्राचार्य का योग शास्त्र, पृ.२८७*** ।
(५) मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त नहीं है, इसी कराण हम ग्रंथों का नाम लिखते हैं, शास्त्रों का नहीं ।-***अज्ञान तिमिर भास्कर ग्रन्थ*** ।
(६) चैत्य और देवालय (अर्थात् मंदिर) बनाने में जो पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि जीवों की हिंसा करते है, वे मंदबुद्धि वाले हैं अर्थात् अज्ञानी, भोले, मूर्ख प्राणी है ।-***प्रश्नव्याकरण सूत्र-अध्ययन-१*** ।

(७) 'पूजा कोटि समं स्त्रोत्रं'अर्थ– करोड पूजा करने से जो फल होता है उतना ही एकबार स्त्रोत्र पढने से हो जाता है ।–***जैन तत्त्वादर्श ग्रन्थ, पृ–३८७ ।***

आदर्श श्रमणोपासक के लिये महत्त्व की शिक्षाए :– (१) सभी जैन श्रमणों का सादर सत्कार सन्मान विनय–भक्ति शिष्टाचार आदि अवश्य करना, समय निकाल कर ज्ञान प्राप्त करना, यथाशक्ति सेवा सहयोग करना, सुपात्र दान देकर शाता पहुँचाना । (२) अन्य मतावलम्बी जैनेत्तर सन्यासी आदि से अति परिचय आदि न करना किन्तु स्वत: संयोग मिल जाय तो अशिष्टता असभ्यता नहीं करना । (३) कुल परम्परा से देव–देवी पूजन आदि करना पडे तो उसे धर्म नहीं समझ कर सांसारिक कार्य पारिवारिक कृत्य समझना । (४) हिंसा में, एवं आडम्बर में धर्म नहीं समझना और हिंसा आडम्बर को जो धर्म बतावे उसे खोटा समझना । पाप के आचरण को कभी धर्म नहीं मानना ।(५) किसी भी व्यक्ति समुदाय विशेष की निंदा, अवहेलना, घृणा नहीं करना । मध्यस्थ भाव, समभाव, अनुकंपाभाव रखना । (६) जिनाज्ञा का उल्लंघन करने वाले श्रमणों को सदा यथावसर विनय–विवेकयुक्त शब्दों में सूचित करते रहना । किन्तु निंदा नहीं करना । (७) संसार के किसी भी प्राणी के प्रति अपने मन में राग अथवा द्वेष अर्थात् नाराजगी, चिड, एलर्जीभाव नहीं रखना । चाहे वह पापी हो, दुष्ट हो, विरोधी हो, प्रतीपक्षी हो, धर्मी हो, अशुद्ध धर्मी हो, अथवा अहित करने वाला हो, पागल या मूर्ख हो या शिथिलाचारी हो, अन्य सम्प्रदाय या धर्म का अनुयायी हो । सभी के प्रति अपना चित साफ (स्वस्थ) और प्रसन्न रखना चाहिये । सब के पुण्य और उदय कर्म अलग–अलग होते है, ऐसा चिंतन करके समभाव रखना चाहिए । यह समकित का प्रथम लक्षण 'सम' है । (८) परमत, परपाखंड, अन्यदर्शनी मिथ्यादृष्टि आदि की संगति, प्रशंसा, सन्मान आदि का सम्यकत्व शुद्धि की अपेक्षा आगमों में निषेध है। किन्तु स्वदर्शनी जिनमतानुयायी तीर्थंकरों का अनुयायी आदि जो जैन श्रमण निर्ग्रंथ है उनसे नफरत करना, अनादर करना अयोग्य आचरण है । राग, द्वेष मूलक आचरण है । संकीर्ण वृत्ति का परिचायक है एवं आगम संमत भी नहीं है । अपितु जिन शासन की अवहेलना कराने वाला एक निम्न कर्तव्य है । अत: श्रमणोपासक को समस्त जैन श्रमणों का सन्मान रखना चाहिये तथा अनादर तिरस्कार तो किसी का भी नहीं करना चाहिये ।

श्रावक शिक्षा :– (१) पुण्य से प्राप्त हुई रिद्धि का गर्व करना नहीं। (२) चाहे कितनी भी समृद्धि और प्रवृत्ति हो तो भी श्रावक के १२ व्रत स्वीकारने में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये । (३) महीने में छ पौषध व्रत अंगीकार करने का लक्ष्य रखकर, भले महीने में एक–दो पौषध से भी शुरूआत करनी चाहिए ।(४) घर के प्रत्येक सदस्यों– माता, पिता, पति, पत्नि आदि को भी योग्य प्रेरणा देकर १२ व्रतधारी श्रावक बन जाय ऐसा प्रयत्न करना चाहिये । (५) सांसारिक जवाबदारी कितनी ही बडी क्यों न हो, तो भी योग्य समय आने पर उससे निवृत्ति लेकर विशिष्ट साधना करने का लक्ष्य रखना चाहिये । (६) मौत आने तक संसारिक व्यवहारो में प्रतिबद्ध नहीं रहना चाहिये । (७) असह्य परिस्थिति में तथा संकट की घडी उपस्थित होने पर भी धर्म श्रद्धा और धर्माचरण में द्रढ श्रद्धा बनाए रखनी चाहिये । (८) चमत्कारों में धर्मिष्ठ व्यक्ति को नहीं फँसना चाहिये । (९) किसी भी धर्मी व्यक्ति पर संकट आता देखकर धर्म शासन की श्रद्धा प्ररूपणा में अपना पूर्ण विवेक रखना ही चाहिये । किसी भी प्रकार की निराशा भरे वाक्य नहीं बोलने चाहिये । क्यों कि चमत्कार होना ये कोई धर्म का जरूरी फल नहीं है । समभाव–समाधि की प्राप्ति होना ही धर्म का सच्चा फल है । (१०) जीवन में पूर्ण धार्मिक–संवर–तपोमय जीवन जीने के लिये एक उम्र मर्यादा नक्की कर लेनी चाहिये । यथा–६० वर्ष के बाद मैं पूर्ण धार्मिक जीवन से रहूँगा ।

सामायिक– (१) सामायिक के विधि–दोषों का ज्ञान अवश्य

करना चाहिये । (२) ज्ञान के बाद इमानदारी पूर्वक सभी दोषों से रहित सामायिक करनी चाहिये । (३) सामायिक में कोई भी दोष नहीं लगें ऐसी लगन रखनी चाहिये । (४) सामायिक में समयमात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये । समाचारपत्र या उपन्यास नहीं बढनी चाहिये । (५) सामायिक में आत्मचिंतन एवं धार्मिक पुस्तकों का वांचन करना चाहिये या धर्म की वार्ता श्रवण करनी चाहिये । (६) सामायिक में अधिकतम मौन रखनी चाहिये । (७) दोष रहित सामायिक करने से ही श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है । (८) चौवीस घंटों में एक घंटा निकालं कर प्रतिदिन एक सामायिक अवश्य करनी चाहिये ।

आदर्श श्रमण बनने के लिये–

(१) किसी भी गांव घर या गृहस्थ में ममत्व न करो अर्थात् उनको मेरा मेरा न करो । (२) विभूषावृत्ति न करो अर्थात् सुन्दर दिखने हेतु शरीर उपकरण को न सजाओ ।(३) किसी भी व्यक्ति या प्राणी से अथवा साधु से घृणा न करो । गुस्सा घमण्ड से घृणा करो। (४) किसी की निंदा, तिरस्कार, इन्सल्ट न करो । (५) कभी भी शोक संतप्त न बनो, सदा प्रसन्नचित्त रहो ।

आचारशुद्धि करो–

(१) नौ वाड सहित ब्रह्मचर्य का परिपूर्ण पालन करो । (२) भाव और भाषा को सदा पवित्र रखो । (३) आहार, पानी, मकान, वस्त्र–पात्र आदि की शुद्ध गवेषणा करो । (४) गमनागमन आदि प्रवृत्ति विवेकपूर्ण रखो । (५) मृदुभाषी, पवित्र हृदयी, सरल शांत स्वभावी बनो । (६) आगम स्वाध्याय, एकत्व भावना एवं तपस्या में लीन बने रहो । (७) आगमों को अर्थ सहित कंठस्थ करो ।

आदर्श श्रावक बनने के लिये–(१) नित्य सामायिक करो (२) महिने में ६ पौषध करो (३) रोज नियंम (१४ नियम धारण)करो (४) तीन मनोरथ चिंतन करो (५) प्रतिदिन प्रतिक्रमण करो ।

पांच काम छोडो–(१) रात्रि भोजन (२) जमीकंद खाना (३) सचित्तपदार्थ खाना (४) कर्मादान के व्यापार (५) प्रवृत्ति मिथ्यात्व ।

मुनि दर्शन के पहले–(१) फल, पान, इलायची आदि सचित्त वस्तु अपने पास मत रखो ।(२) जूते–चप्पल खोल दो, शस्त्र आदि दूर रख दो ।(३) खुले मुँह मत रहो, मुंहपति या उत्तरासन लगावो । (४) हाथ जोडकर मुनि सीमा में प्रवेश करो । (५) रागद्वेष की मनोवृत्तिएँ हटाकर चित्त निर्मल एवं एकाग्र करो ।

छेद सूत्र का वांचन : श्रमणोपासक

(१) चार तीर्थ में श्रमणोपासक एक तीर्थ है ।– ***ठाणांग सूत्र ।***
(२) चतुर्विध श्रमणसंघ में श्रावक भी एक अंग है ।– ***ठाणांग सूत्र ॥***
(३) श्रावक व्याख्यान दे सकते हैं ।– ***वर्तमान व्यवहार ॥***
(४) श्रावक आलोचना सुन सकते है, करा सकते है ।–***व्यवहारसूत्र ।***
(५) श्रावक साधु–साध्वी को प्रायश्चित दे सकते हैं ।– ***व्यव.सूत्र॥***
(६) श्रावक निर्ग्रंथ प्रवचन में कोविद, पारंगत हो सकता है।– ***उत्तरा. सूत्र ॥***
(७) श्रावक बहुश्रुत हो सकता है ।– ***व्यवहार सूत्र ॥***
(८)श्रावक ११ अंगों का अध्ययन कर सकता है ।– ***नंदी सूत्र ॥***
(९) आचारांग सूत्र का ही एक अध्ययन है निशीथ सूत्र (छेद सूत्र)।
(१०) श्रावक अवधिज्ञानी हो सकता है ।– ***उपाशकदशांग सूत्र ॥***
(११) इसीलिये 'श्रावक को सूत्र वांचन का या शीखने का अधिकार नहीं है' ऐसा कहना अनुचित है तथा श्रावक छेदसूत्र नहीं पढ सकता यह कहना भी अनुचित है, कारण कि– श्रावक ११ अंगों का पाठक बन सकता है तो छेदसूत्र क्यों नहीं पढ सकता ? वर्तमान में निशीथ सूत्र छेदसूत्रों में होते हुए भी वास्तव में तो आचारांग सूत्र का अध्ययन ही है । इसलिये शास्त्र अध्ययन के निषेधक वचन बोलना व्यर्थ है ।
(१२) श्रावक बहुश्रुत हो सकता है और आलोचना सुनकर प्रायश्चित्त भी दे सकता है । ऐसी योग्यता वास्तव में छेदसूत्र के जानकार को ही हो सकती है और वही प्रायश्चित दे सकता है ।

(१३) इसीलिये छेदसूत्रों का हिन्दी या गुजराती भाषानुवाद विवेचन, सारांश श्रावक नहीं पढ सकता, ऐसा अनुचित शब्दप्रयोग किसी को भी नहीं करना चाहिये ।

(१४) श्रावक संघ व्यवस्था का संचालन भी कर सकते हैं तो फिर उसके लिये व्यवहार सूत्र नाम के छेदसूत्र का ज्ञान अत्यंत आवश्यक हो जाता है ।

(१५) इस प्रकार श्रावक-श्राविका भी छेदसूत्र के अधिकारी होते है ।

(१६) श्रमण-श्रमणीयों को तो छेदसूत्र कंठस्थ करना ही चाहिये और हर समय उसका अध्ययन, चिंतन, मनन करना संयम जीवन में परम उपयोगी होता है ऐसा समजना एवं स्वीकारना चाहिये । अतः साध्वी के लिये भी छेदसूत्र के अध्ययन का निषेध करना उत्सूत्र प्ररूपणा है ।

०००००

भाषाविवेक क्या है ? समझें ।

खोटे मार्ग और खोटे आचरण में स्थित व्यक्तियों को शिक्षित करने के लिये भाषा की एकांत मृदुता की बातें करना भी एक भूल युक्त कर्तव्य है । आगम मे आगमकार की भाषा भी देखें कि- (१) आहार के पदार्थों का संग्रह करने वाला श्रमण **गृहस्थ है** वह **प्रव्रजित नहीं है** ऐसा स्पष्ट कथन है । -***दशवै.अध्य.६*** । (२) जो श्रमण प्रतिलेखना में प्रमाद करता है, विगयों का सेवन करके भी तप नहीं करता है तो वह **पापीश्रमण** है । - ***उत्तरा.१७*** । (३) **मिथ्यादृष्टि कुलिंगियों** के समक्ष ही उन्होंने (कुवलयप्रभ आचार्य ने) तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया । - ***महानिशीथसूत्र*** । (ये शब्द मंदिर मूर्तिपूजकों के लिये स्वयं सूत्रकार ने प्रयोग किये हैं ।) (४) **धिक्कार है, तुमको, हे अपयश के कामी !- *दशवैकालिक सूत्र*** । (ये शब्द एक उसी भव में मोक्षगामी श्रमण के लिये एक साध्वी ने प्रयोग किये है जिसे सूत्रकार **ने** उसकी अगली गाथा में**सुभाषितवचन** कहा है।) (५) **माईमिच्छादिट्ठी, मिच्छादिट्ठी अणारिया** आदि ऐसे निष्ठुर वचन शास्त्रों में अनेक जगह आते हैं। (६) गौशालक-जमाली के भावी जीवन की पृच्छा करते हुए गौतम स्वामी ने और उत्तर देते हुए भगवान ने यों दोनों ने **कुसिस्से,** मम कुसिस्से **ऐसे निष्ठुर शब्द प्रयोग किये हैं ।** (७) स्वयं की पत्नी **रेवती** के अस्लील व्यवहार करने पर महाशतक श्रावक ने संथारे में कठोर शब्दों में उसके भविष्य का कथन किया। तब प्रभु महावीर ने उसका प्रायश्चित्त करवाने गौतम गणधर को भेजा था तथापि गौशालक को स्वयं प्रभु ने उसके असत्य भविष्य कथन के उत्तर में कहा था कि तूं खुद सात दिन में मर जायेगा, मैं तो अभी १६ वर्ष विचरण कढंगा । फर्क यह था कि प्रभु के कषाय नष्ट हो चुके थे अतः अकषाय भाव से कहा था । जब कि महाशतक ने हैरान परेशान खिन्न होकर अवधिज्ञान में उपयोग लगाकर वे शब्द खिन्नता से कहे थे ।

सार यह है कि भाषा विवेक में भी जिनशासन में एकांतिकता नहीं है परंतु अनैकांतिकता निहित है । इसलिये कभी कहीं तीक्ष्ण भाषा प्रयोग भी अनुचित नहीं होता है । इस गूढ सत्य को भी समझने की आवश्यकता है । ध्यान यह रहे कि उस तीक्ष्ण भाषा में कषाय परिणाम या मस्तिष्क की उष्मा प्रस्फुटित नहीं होनी चाहिये । ज्ञान एवं बोध देने मात्र का उद्देश्य होना चाहिये । सन्मार्गदर्शकता के भाव होने चाहिये ।

इसलिये खोटी परंपराओं, खोटे धर्म मार्ग, खोटे इतिहास, खोटे आचार ढोंग, खोटी प्ररूपणाएँ एवं आगम में प्रक्षेप करने की होशियारियों के प्रसंग में सत्य कथन करने, समझाने एवं दृढता पूर्वक सत्य निरूपण करने में किसी के शब्दों की तीक्ष्णता दिखे तो उसे गौण करके वक्ता या लेखक के जिनशासन के प्रति रहे भावों को एवं शोधपूर्वक के ज्ञान परिश्रम को आदर देना ही मुख्य कर्तव्य होता है; इसे कभी भूलना नहीं चाहिये । **सुज्ञेषु किं बहुना** । इस प्रकार भाषा विवेक आगमाधार से समझना चाहिये, एकांतिक ढर्रा दिमाग में नहीं रखना चाहिये ।

श्रुत साहित्य : परिचय

आगम :- सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवंतो की वाणी जिसमें संग्रहित हो और जो पूर्वधारी प्रमाणिक पुढषों के द्वारा रचित हो, वे आगम कहलाते हैं । स्थानकवासी तथा श्वेतांबर मूर्तिपूजक परंपराओं में क्रमशः ३२ और ४५ आगम की मान्यताएँ चल रही है ।

अंग आगम :- गणधरों द्वारा रचित १२ अंगसूत्र अंग आगम कहे जाते हैं । वर्तमान में ११ अंगशास्त्र उपलब्ध है । बारहवाँ दृष्टिवाद अंग विच्छेद गया है । उसके कुछ अंश अंग बाह्य आगम रूप मे मिलते हैं ।

अंग बाह्य आगम :- गणधर सिवाय अन्य बहुश्रुत, प्रमाणिक पुढषों द्वारा रचित आगम अंग बाह्य आगम कहे जाते हैं । उसके- (१) उपांगसूत्र (२) छेदसूत्र और (३) मूल सूत्र, ऐसे नाम देवर्धिगणि के पश्चात् प्रचलित हुए है । ये तीनों ही नाम प्राचीन काल में नहीं थे और आगमों के मूलपाठ में भी ऐसे नाम नहीं है।

उपांग सूत्र :- बारह अंग संख्या को लक्ष्य में रखते हुए अंग बाह्य शास्त्रों में से बारह शास्त्रों को उपांग संज्ञा दी गई है । स्वीकृत १२ उपांग सूत्रों में निरयावलिकादि पांच का सम्मिलित सूत्रनाम **उपांग सूत्र** है, वह सूत्र जिस आगम संपुट के साथ है वे सभी आगम भी उपांग सूत्र संज्ञा(नाम)वाले कहलाये हैं ।

छेद सूत्र :- प्रायः करके साध्वाचार के औत्सर्गिक और आपवादिक नियम-उपनियम, संघ व्यवस्था एवं प्रायश्चित्त आदि विषयों से परिपूर्ण शास्त्रों को छेदसूत्र संज्ञा दी गई है, वे चार है- (१) निशीथ सूत्र (२) दशाश्रुत स्कंध सूत्र (३) बृहत्कल्प सूत्र (४) व्यवहार सूत्र ।

मूल सूत्र :- मूलभूत शास्त्रों को मूल आगम कहा गया है, वे चार हैं- **(१)** दशवैकालिक सूत्र- उसमें मौलिक साध्वाचार के विधि विधान है । **(२)** उत्तराध्ययन सूत्र- विनय, वैराग्य आदि अनेक मौलिक गुणो और तत्त्वों को समाविष्ट करने वाला यह शास्त्र है । **(३)** नंदी सूत्र- समस्त क्रियाओं में मूल अवलंबनभूत **ज्ञान** है। उस ज्ञान का भेद-प्रभेद युक्त विस्तृत वर्णन करने वाला शास्त्र यह नंदीसूत्र हैं । **(४)** अनुयोग द्वार सूत्र- कोई भी विषय का विस्तृत वर्णन करने वाली अनुयोग पद्धति मौलिक रूप से इस शास्त्र में सुरक्षित की गई है । इस प्रकार अपनी-अपनी विशिष्ट अपेक्षाओं से इन चार शास्त्रों को मूलसूत्र रूप में माना गया है ।

आवश्यक सूत्र :- यह मौलिक शास्त्र भी है, अतः मूलसूत्र कहा जा सकता है और शिखरस्थ आगम भी है इसलिये चूलिका शास्त्र भी कहा जा सकता है ।

आगम-व्याख्याएँ : निर्युक्ति :- देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के द्वारा आगम लिपिबद्ध होने के बाद उनके उपर व्याख्याएँ लिखी गई है । मौखिक व्याख्याएँ तो वाचना रूप में गुढ-शिष्यों में उस-उस रूप में चलती ही थी ।सर्व प्रथम आगमों पर जो व्याख्या लिखी गई उसका नाम **निर्युक्ति** रखा गया । उसमें मुख्य रूप से शब्दों के निढक्त अर्थ संक्षिप्त में दर्शाये गये हैं । वैसी व्याख्याएँ १० शास्त्रों पर बनी थी और उसके कर्ता द्वितीय भद्रबाहुस्वामी थे जो देवर्धिगणि क्षमाश्रमण से ५०-६० वर्ष बाद में हुए । वे दश शास्त्र इस प्रकार है- (१-४) चार छेद सूत्र (५-६) दशवैकालिक-उत्तराध्ययन (७-८) आचारांग-सूयगडांग (९) सूर्यप्रज्ञप्ति (१०) आवश्यक सूत्र । इस दस में से ९ प्रकाशित उपलब्ध है । एक सूर्यप्रज्ञप्ति की निर्युक्ति उपलब्ध नहीं रही है, लुप्त हो गई है । ये निर्युक्ति व्याख्याएँ प्राकृत-अर्धमागधी भाषा में है और श्लोकबद्ध है, गद्य रूप में नहीं है । इनका समय वीर निर्वाण की ग्यारहवीं शताब्दी है ।

भाष्य :- आगमों पर दूसरे नंबर में जो व्याख्याएँ लिखने में आई है उसका नाम भाष्य रखा गया है । जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण और आचार्य सिद्धसेनगणि ये दो महापुढष भाष्यकर्ता के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं । निर्युक्ति के उपर ही भाष्य व्याख्या की रचना हुई है, अतः उसी १० आगम पर भाष्य रचे गये होंगे; जिसमें सूर्यप्रज्ञप्ति का भाष्य अज्ञात है, उसके संबंध में जानकारी अनुपलब्ध है । शेष ९ आगम की निर्युक्ति व्याख्या के साथ भाष्य व्याख्या

उपलब्ध है । भाष्य भी प्राकृत श्लोकबद्ध होने से इन दोनों व्याख्याओं का अस्तित्व कहीं स्वतंत्र और कहीं मिश्र इस तरह उपलब्ध है । इन भाष्य व्याख्याओं का समय वीर निर्वाण की बारहवीं शताब्दी है ।

चूर्णि :- भाष्य के बाद आगमों के उपर जो प्राकृत-संस्कृत मिश्र गद्यमय व्याख्या बनी उसका नाम चूर्णि रखा गया है । उसके कर्ता जिनदासगणि, अगस्त्यसिंह सूरि आदि हुए हैं ।इन व्याख्याओं के बनने का समय वीरनिर्वाण की तेरहवीं शताब्दि है । चूर्णि व्याख्या उपरोक्त १० आगम के सिवाय भगवती, प्रज्ञापना, अनुयोगद्वार, नंदी आदि शास्त्रों के उपर भी लिखी गई है ।

टीका :- चौथे नंबर में आगामों पर जो व्याख्याएँ हुई है उसका नाम **टीका** रखा गया है । टीकाएँ शुद्ध संस्कृत भाषा में रची गई है । प्रारंभिक टीकाकार कोट्याचार्य, हरिभद्रसूरि आदि हुए हैं । उसके बाद शीलांकाचार्य, अभयदेवसूरि, मलयगिरि, क्षेमकीर्ति, शांतिचंद्राचार्य आदि अनेक विद्वान हुए हैं । टीकाओं का समय वीरनिर्वाण की तेरहवीं शताब्दि से लेकर सोलहवीं-सत्तरहवीं शताब्दी तक है । कोइक आगम पर मात्र चूर्णि है, टीका नहीं है। शेष सभी आगमों पर टीका व्याख्या है । बीसवीं सदी में आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. ने समस्त (३२) आगमों पर पुनः नवीन रूप से सरल एवं विस्तृत संस्कृत भाषा में टीकाएँ तैयार की एवं कराई है और उसी के साथ उसका हिन्दी-गुजराती अनुवाद भी संपादित करके कुल ४ भाषा युक्त सभी आगम ग्रंथ प्रकाशित करवाये है ।

टब्बा :- विक्रम की १४ वीं १५ वीं शताब्दी में शास्त्रों के मूलपाठ के साथ संक्षिप्त गुजराती भाषा में अर्थ, शब्दार्थ कागज पर लिखने में आये हैं । उन पत्राकार पोथीओं को **टब्बा** कहने में आया है । उसके बाद प्रकाशन युग का प्रारंभ होने पर हिन्दी-गुजराती **भाषानुवाद** तथा विस्तृत **विवेचन** हुए हैं । समयाभाव के आज के युगमें व्याख्याता गृहस्थ स्वाध्यायीयों को लक्ष में रखकर आगमों का संक्षिप्तिकरण अर्थात् आगम अर्क रूप में जैनागम नवनीत (संक्षिप्त आगम सारांश) तथा तत्त्वों संबंधी थोकडे (स्तोक संग्रह) प्रकाशित हुए हैं ।

इस प्रकार **टब्बा** के बाद २० वीं २१ वीं सदी में आगमों के (१) भाषानुवाद (२) विवेचन (३) थोकडा (४) सारांश (५) प्रश्नोत्तर आदि बने हैं, बन रहे हैं ।

ooooo